संपहि सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स सव्वजहण्णोगाहणं महामच्छोगाहणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि एगरूवे पक्खिविय पुणो एदेण सेडीए असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडीओ होंति। के वि आइरिया तिरियपदरेण गुणिदघणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा एक्केक्किस्से ओगाहणाए होंति त्ति भणंति। तण्ण घडदे, सुत्तविरुद्धत्तादो– 'लोगो[1] सेडीए असंखेज्जदि-भागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ' त्ति। ण च एदम्हि सुत्ते रज्जुपदरगुणिदघण-लोगणिद्देसो अत्थि जेणेदं वक्खाणं सच्चं होज्ज। संपहि लोगो सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणेयव्वो। एवं गुणिदाओ पयडीओ होंति त्ति सुत्तसंबंधो कायव्वो।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥११९॥

सुगमं।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ पणदालीसजोयणसदस-हस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि उड्ढकवाडछेदणणिप्फण्णाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ। एवडियाओ पयडीओ ॥ १२० ॥

अब सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी सबसे जघन्य अवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलाकर इस श्रेणिके असंख्यातवें भाग इससे घनलोकको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं। कितने ही आचार्य तिर्यक्प्रतरसे गुणित घनलोक प्रमाण एक एक अवगाहना सम्बन्धी तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं, ऐसा कथन करते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, इस कथनमें प्रकृत सूत्रसे विरोध आता है – 'लोकको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करे' यह उसका विरोधी सूत्रवचन है। इस सूत्रमें 'राजुप्रतरसे गुणित घनलोक' ऐसा उल्लेख नहीं है जिससे कि यह व्याख्यान सत्य माना जाय। अब लोकको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करना चाहिए। इस प्रकार गुणित करनेपर उक्त प्रकृतियां होती हैं, ऐसा यहां सूत्रका सम्बन्ध करना चाहिए।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां ऊर्ध्वकपाटछेदनसे निष्पन्न पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरोंको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहना-विकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां होती हैं ॥ १२० ॥

---

(१) ताप्रतौः 'सुत्तविरुद्धत्तादो। लोगो' इति पाठः।

एदस्स सुत्तस्स अत्थपरूवणा कीरदे। तं जहा- उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए सुहुमणिगोदअपज्जत्तो विग्गहगदीए मणुस्सेसु उववण्णो। तत्थ एगो मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि। किंफला एसा पयडी ? जहण्णोगाहणाए अपुव्वसंठाणणिप्पायणफला। खेत्तंतरगमणफला त्ति किण्ण वुच्चदे ? ण, आणुपुव्विउदयाभावेण उजुगदीए गमणाभावप्पसंगादो। पुणो बिदिए सुहुमणिगोदअपज्जत्तजीवे जहण्णोगाहणाए विग्गहगदीए मणुस्सेसु उववण्णे बिदिओ मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाए वियप्पो होदि। पुणो तदिए सुहुमणिगोदअपज्जत्तजीवे जहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वेण मुहायारेण मणुस्सेसु उववण्णे[1] तदिओ मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीए वियप्पो होदि, अण्णहा अपुव्वमुहागारुप्पत्तिविरोहादो। ण च कज्जभेदादो कारणभेदो असिद्धो, अकारणकज्जुप्पत्तिप्पसंगादो। एदं सव्व जहण्णोगाहणं णिरुंभिऊण[2] अलद्धपुव्वणाणाविहमुहागारेहि मणुस्सेसु मारणंतियं करेमाणसुहुमणिगोदजीवाणं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विपयडिवियप्पा[3] उप्पादेदव्वा जाव पणदालीसजोयणसयसहस्सबाहल्लाणं तिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया वियप्पा लद्धा त्ति।

इस सूत्रके अर्थका कथन करते हैं। यथा - उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण सबसे जघन्य अवगाहनाके द्वारा सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव विग्रहगतिसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। यहां मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प प्राप्त होता है।

शंका - इस प्रकृतिका क्या फल है ?

समाधान - उसका फल जघन्य अवगाहनाके द्वारा अपूर्व संस्थानोंको निष्पन्न कराना है।

शंका - क्षेत्रान्तरमें ले जाना, यह इस प्रकृतिका फल क्यों नहीं कहते ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, ऋजुगतिमें आनुपूर्वीका उदय नहीं होता, अतएव वहां ऋजुगतिसे अन्य गतिमें गमनके अभावका प्रसंग आता है।

पुनः दूसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जघन्य अवगाहनाके साथ विग्रहगतिसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर दूसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प होता है। पुनः तीसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जघन्य अवगाहनाके साथ अलब्धपूर्व मुखाकारके द्वारा मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर तीसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प होता है, क्योंकि, अन्यथा अपूर्व मुखाकारकी उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है। यदि कहो कि कार्यभेदसे कारणमें भेद मानना असिद्ध है, तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, इस तरह कारणके विना ही कार्यकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है। सबसे जघन्य इस अवगाहनाका आलम्बन लेकर अलब्धपूर्व नानाविध मुखाकारोंके साथ मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके पैंतालीस लाख योजन बाहल्य रूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने विकल्प प्राप्त होनेतक मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतिके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए। यहां जघन्य

---

(१) का-ताप्रत्योः 'उववण्णो' इति पाठः। (२) अ-आ-ताप्रतिषु 'णिरंभिऊण' इति पाठः।
(३) अ-आ-काप्रतिषु 'पुव्विवियप्पा' इति पाठः।

संपहि एत्थ जहण्णोगाहणमस्सिदूण मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा एत्तिया चेव लब्भंति। कुदो ? साभावियादो। ण च सहाओ परपज्जणियोगारुहो, अव्ववत्थावत्तीदो। के वि आइरिया मुहसंठाणाणि चेव आणुपुव्वीदो उप्पज्जंति त्ति भणंति। तण्ण घडदे, सेसावयवसंठाणाणम- कारणुप्पत्तिप्पसंगादो।

एदाणि पणदालीसजोयणदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि कधमुप्पण्णाणि त्ति भणिदे उच्चदे- उड्ढकवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि त्ति। इदरेसिमाणुपुव्विकम्माणं तिरियपदराणं घणलोगस्स य उप्पत्तिमपरूविय एदेसिं चेव तिरियपदराणमुप्पत्ती किमट्ठं परूविज्जदे ? लोगसंठाणपरूवणट्ठं। उड्ढकवाडमिदि एदेण लोगो णिद्दिट्ठो। कधमेसा लोगस्स सण्णा ? वुच्चदे[1] - ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटम्, ऊर्ध्वकपाटमिव[2] लोकः ऊर्ध्वकपाटम्। जेण लोगो चोद्दसरज्जुउस्सेहो सत्तरज्जुरुंदो मज्झे उवरिमपेरंते च एगरज्जुबाहल्लो उवरि बम्हलोगुद्देसे पंचरज्जु[3]बाहल्लो मूले सत्तरज्जुबाहल्लो अण्णत्थ जहाणुवड्ढिबाहल्लो, तेण उड्ढियकवाडोवमो। उड्ढकवाडस्स छेदणं उड्ढकवाडच्छेदणं, तेण[4] उड्ढकवाढच्छेदणेण णिप्पण्णाणि एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणि।

अवगाहनाका आलम्बन लेकर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। और स्वभाव दूसरोंके द्वारा प्रश्न करने योग्य नहीं होता, अन्यथा अव्यवस्था प्राप्त हो जावेगी। कितने ही आचार्य आनुपूर्वीसे मुखसंस्थान ही उत्पन्न होते है, ऐसा कथन करते हैं। वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर शेष अवयवोंके संस्थानोंकी अकारण उत्पत्तिका प्रसंग आता है।

ये पैतालीस लाख योजन बाहल्य रूप तिर्यक्प्रतर कैसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहनेपर सूत्रमें 'उड्ढकवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि' यह वचन कहा है।

शंका - इतर आनुपूर्वी कर्मोंके तिर्यक्प्रतरोंकी और घनलोककी उत्पत्ति न कहकर इन्हींके तिर्यक्प्रतरोंकी उत्पत्ति किसलिए कही जाती है ?

समाधान - लोकसंस्थानका कथन करनेके लिए। 'उड्ढकवाडं' इस पदके द्वारा यहां लोकका निर्देश किया है।

शंका - यह लोककी संज्ञा कैसे कही जाती है ?

समाधान - ऊर्ध्व ऐसा जो कपाट वह ऊर्ध्वकपाट है, ऊर्ध्व कपाटके समान होनेसे लोक ऊर्ध्वकपाट कहलाता है। यत: लोक चौदह राजु ऊंचा, सात राजु चौडा, मध्यमें और ऊपर अंतिम भागमें एक राजु बाहल्यवाला, ऊपर ब्रह्मलोकके पास पांच राजु बाहल्यवाला, मूलमें सात राजु बाहल्यवाला, तथा अन्यत्र वृद्धिके अनुरूप बाहल्यवाला है; अतः वह ऊर्ध्वस्थित कपाटके समान कहा गया है। ऊर्ध्वकपाटका छेदन ऊर्ध्वकपाटछेदन है, उस ऊर्ध्वकपाटछेदनसे ये पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर निष्पन्न हुए हैं।

---

(१) ताप्रतौः 'सण्णा वुच्चदे ?' इति पाठः। (२) अ-आ-काप्रतिषु 'कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव' इति पाठः।
(३) ताप्रतौ 'पंजरज्जु' इति पाठः। (४) ताप्रतौ 'उड्ढकवाडस्स छेदणं तेण' इति पाठः।

संपहि एत्थ उड्ढकवाडछेदणविहाणं वुच्चदे। तं जहा- सत्तरज्जुरुंदंतम्मि दोसु वि पासेसु तिण्णि-तिण्णिरज्जुआयामेण एगरज्जुविक्खंभेण उड्ढकवाडं छेत्तव्वं । पुणो पणदालीसजोयणलक्खुस्सेहं मोत्तूण हेट्ठा उवरिं च मज्झिमदेसे उड्ढकवाडं छिंदिदव्वं । पुणो मुह १ भूमि ५ विसेसो ४ उच्छेय $\frac{७}{२}$ भजिदो वड्ढिपमाणं होदि $\frac{८}{७}$ । एदीए वड्ढीए पणदालीसजोयणलक्खेसु वड्ढिदखेत्तं दोसु वि पासेसु अवणेदव्वं । एवमुड्ढकवाडच्छेदेणेण पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि णिप्फण्णाणि । एदेण लोगो मज्झपदेसे विक्खंभायामेहि एगरज्जुमेत्तो होदूण हेट्ठा उवरिं च वड्ढमाणो गदो त्ति जो लोगोवदेसो[१] सो फेडिदो, तत्थ उड्ढट्ठियकवाडसंठाणाभावादो । तुब्भेहि वुत्तलोगो वि उड्ढकवाडसंठाणो ण[२] होदि, वड्ढि-हाणीहि गदबाहल्लत्तादो त्ति वुत्ते-ण, सव्वप्पणा सरिसदिट्ठंताभावादो । भावे वा चंदमुही कण्णे त्ति[३] ण घडदे, चंदम्मि भू-मुहक्खि-णासादीणमभावादो ।

के वि आइरिया उड्ढमुवरि त्ति भणंति, दो वि पासाणि कवाडमिदि भणंति । एदेसिं छेदेण पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणं णिप्पत्तिं[४] परूवेंत्ति । तण्ण घडदे, दोण्णं पासाणं कवाडमिदि सण्णाभावादो । ण च अप्पसिद्धं वोत्तुं जुत्तं, अव्ववत्था-

---

अब यहां ऊर्ध्वकपाट अर्थात् लोककी छेदनविधि कहते हैं। यथा-सात राजु प्रमाण चौडाईमेंसे दोनों ही पार्श्व भागोंमें तीन-तीन राजु आयाम रूपसे और एक राजु विष्कम्भ रूपसे ऊर्ध्वकपाट अर्थात् लोकका छेदन करना चाहिए । पुनः पैंतालीस लाख योजन उत्सेधको छोडकर नीचे व ऊपर मध्यभागमें ऊर्ध्वकपाटका छेदन करना चाहिए । पुनः मुख १ राजु और भूमि ५ राजु, इनका अन्तर ४ राजु, इसमें उत्सेध $\frac{७}{२}$ राजुका भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण $\frac{८}{७}$ होता है । इस वृद्धिके प्रमाणसे पैंतालीस लाख योजनोंमें बढे हुए क्षेत्रको दोनों ही पार्श्वभागोंमेंसे अलग कर देना चाहिए । इस प्रकार ऊर्ध्वकपाटका छेदन करनेसे पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर निष्पन्न होते हैं । इस कथनसे 'लोक मध्य भागमें विष्कम्भ और आयाम रूपसे एक राजु प्रमाण हो करके नीचे और ऊपर वृद्धिंगत होकर गया है' ऐसा जो लोकका उपदेश है वह खण्डित हो जाता है, क्योंकि, उसमें ऊर्ध्वस्थित कपाटके संस्थानका अभाव है । यहां शंकाकार कहता है कि तुम्हारे द्वारा कहा गया लोक भी ऊर्ध्वकपाटके संस्थानरूप नहीं होता है, क्योंकि, उसका बाहल्य वृद्धि और हानिको लिए हुए हैं । सो उसका ऐसा कहना ठीक नहीं हैं, कयोंकि, दृष्टांत सर्वात्मना सदृश नहीं पाया जाता । यदि कहो कि सर्वात्मना सदृश दृष्टांत होता है तो 'चन्द्रमुखी कन्या' यह घटित नहीं हो सकता, क्योंकि, चन्द्रमें भ्रू, मुख, आंख और नाक आदिक नहीं पाए जाते ।

कितने ही आचार्य 'ऊर्ध्व' का अर्थ 'ऊपर' ऐसा कहते हैं और दोनों ही पार्श्व कपाट हैं, ऐसा कहते हैं । वे इनके छेदनसे पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतारोंकी निप्पत्ति कहते हैं । परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, दोनों पार्श्वोंकी 'कपाट' यह संज्ञा नहीं है । और जो बात अप्रसिद्ध है उसका कथन करना उचित नहीं है, क्योंकि, इससे अव्यवस्थाकी आपत्ति

---

(१) ताप्रतौ 'त्ति लोगोवदेसो' इति पाठः । (२) काप्रतौ 'संठाणेण', ताप्रतौ 'संठाणे (णो) ण' इति पाठः ।
(३) ताप्रतौ 'चंद्रमुहीकरणेत्ति' इति पाठः । (४) ताप्रतौ 'णिप्पण्णं' इति पाठः ।

वत्तीदो। ण च उवमेयस्स उवमाणसण्णा असिद्धा, अग्गिसमाणमणुअम्मि, अग्गिववएसुवलं-भादो । के वि आइरिया एवं भणंति जहा पणदालीसजोयणलक्खाणं रज्जुपदरस्स य अद्धच्छेदणए[1] कदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि अद्धच्छेदाणि लब्भंति । जत्तियाणि एदाणि अद्धच्छेदणाणि तत्तियमेत्ता[2] मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति त्ति । एत्थ उवदेसं लद्धूण एदं चेव वक्खाणं सच्चमण्णं असच्चमिदि णिच्छओ कायव्वो । एदे च दो वि उवएसा सुत्तसिद्धा । कुदो ? उवरि दो वि उवदेसे अस्सिदूण अप्पाबहुगपरूवणादो । विरुद्धाणं दोण्णमत्थाणं परूवयं कधं सुत्तं होदि त्ति वुत्ते- सच्चं, जं सुत्तं तमविरुद्धत्थपरूवयं[3] चेव । किंतु णेदं सुत्तं, सुत्तमिव सुत्तमिदि एदस्स उवयारेण सुत्तत्तब्भुवगमादो । किं पुण सुत्तं ?

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च ।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च[4] ॥ ३४ ॥

ण च भूदबलिभडारओ गणहरो पत्तेयबुद्धो सुदकेवली अभिण्णदसपुव्वी वा जेणेदं सुत्तं होज्ज । जदि एदं सुत्तं ण होदि तो सव्व (म[5]प्पमाणत्तं किं ण पसज्जदे ? ण, एगुद्देसम्मि

आती है। उपमेयकी उपमान संज्ञा असिद्ध है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, अग्निके समान मनुष्यकी अग्नि संज्ञा देखी जाती है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि पैंतालीस लाख योजनों और राजुप्रतरके अर्द्धच्छेद करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र अर्द्धच्छेद उपलब्ध होते हैं । और जितने ये अर्द्धच्छेद होते हैं उतने ही मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं । यहांपर उपदेशको प्राप्त करके यही व्याख्यान सत्य है, क्योंकि, अन्य व्याख्यान असत्य है; ऐसा निश्चय करना चाहिए । ये दोनों ही उपदेश सूत्रसिद्ध हैं, क्योंकि, आगे दोनों ही उपदेशोंका आश्रय करके अल्पबहुत्वका कथन किया गया है ।

शंका – विरुद्ध दो अर्थोंका कथन करनेवाला सूत्र कैसे हो सकता है ?

समाधान – यह कहना सत्य है, क्योंकि, जो सूत्र है वह अविरुद्ध अर्थका ही प्ररूपण करनेवाला होता है । किन्तु यह सूत्र नहीं है, क्योंकि, सूत्रके समान जो होता है वह सूत्र कहलाता है, इस प्रकारसे इसमें उपचारसे सूत्रपना स्वीकार किया है ।

शंका – तो फिर सूत्र क्या है ?

समाधान – ''जिसका गणधरने कथन किया हो, उसी प्रकार जिसका प्रत्येकबुध्दोंने कथन किया हो, श्रुतकेवलियोंने जिसका कथन किया हो, तथा अभिन्नदशपूर्वियोंने जिसका कथन किया हो, वह सूत्र है'' ॥ ३४ ॥ परन्तु भूतबलि भट्टारक न गणधर हैं, न प्रत्येकबुद्ध हैं, न श्रुतकेवली हैं, और न अभिन्नदशपूर्वी ही हैं ; जिससे कि यह सूत्र हो सके ।

शंका – यदि सूत्र नहीं है तो सबके अप्रमाण होनेका प्रसंग क्यों न प्राप्त होगा ?

---

(१) ताप्रतौ 'अद्धच्छेदणाए' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'असंखे० भागमेत्ताणि अद्धछेदणाणि तत्तिपमेत्ता' इति पाठः ।
(३) अ-आ-काप्रतिषु 'परूवणं' इति पाठः । (४) भ.आ.३४, मूला.५, ८०,
(५) अ-आ-काप्रतिषु कोष्टकस्थोऽयं पाठो नास्ति ।

पमाणत्ते संदिद्धे संते सव्वस्स) अप्पमाणत्तविरोहादो। पमाणत्तं कुदो णव्वदे ? राग-दोस-मोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरंपराए आगदत्तादो । अम्हाणं पुण[1] एसो अहिप्पाओ जहा पढमपरूविदअत्थो[2] चेव भद्दओ, ण बिदिओ त्ति । कुदो ? पणदालीसजोयणलक्खबाहल्लाणं तिरियपदराणं[3] अद्धच्छेदणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ त्ति सुत्ते संबंधुज्जोवछट्ठिअंतणिद्देसाभावादो णिरत्थयउड्ढकवाडच्छेदणयणिद्देसादो वा, केसु वि सुत्तपोत्थएसु बिदियमत्थमस्सिदूण परूविदअप्पाबहुआभावादो च । एदाए ओगाहणाए[4] लद्धआणुपुव्विपयडीओ ठविय सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणं महामच्छुक्कस्सोगाहणाए सोहिय एगरूवे पक्खित्ते सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ता ओगाहणवियप्पा होंति । एदेहि ओगाहणवियप्पेहि एगोगाहणआणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीए सव्वपयडिसमासो होदि ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥१२१॥

सुगमं ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ णवजोयणसदबाहल्लाणि

समाधान – नहीं, क्योंकि, एक उद्देशमें प्रमाणताका संदेह सबको अप्रमाण माननेमें विरोध आता है।

शंका – सूत्रकी प्रमाणता कैसे जानी जाती है ?

समाधान – राग, द्वेष, और मोहका अभाव हो जानेसे प्रमाणीभूत पुरुषपरम्परासे प्राप्त होनेके कारण उसकी प्रमाणता जानी जाती है ।

हमारा तो यह अभिप्राय है कि पहले कहा गया अर्थ ही उत्तम है, दूसरा नहीं; क्योंकि, 'पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके अर्द्धच्छेदोंको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करे' इस प्रकार सूत्रमें सम्बन्धको दिखानेवाले षष्ट्यन्त निर्देशका अभाव है, अथवा ऊर्ध्वकपाट छेदनका निर्देश निरर्थक किया है, कितनी ही सूत्रपोथियोंमें दूसरे अर्थका आश्रय करके कहे गए अल्पबहुत्वका अभाव भी है ।

इस अवगाहनासे प्राप्त आनुपूर्वी प्रकृतियोंको स्थापित करके सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलानेपर जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनाविकल्प होते हैं । इन अवगाहनाविकल्पोंसे एक अवगाहना सम्बन्धी आनुपूर्वीविकल्पोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सब प्रकृतिविकल्पोंका जोड होता है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको

---

(१) अप्रतौ 'अह्मं पुण', आ-काप्रत्योः 'अहमं पुण', ताप्रतौ 'अह्मंपुण (अम्हाणं पुण)' इति पाठः ।
(२) अ-आ-काप्रतिषु 'पढमं परूविदं अत्थो' इति पाठः । (३) अ-का-ताप्रतिषु 'तिरियपदराणि' इति पाठः ।
(४) ताप्रतौ 'एदाए एगो (ओ) गाहणाए' इति पाठः ।

तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ। एवडियाओ पयडीओ ।। १२२ ।।

'तिरियपदराणि' त्ति पुव्वं णवुंसयलिंगेण णिद्देसं काऊण पच्छा 'गुणिदाओ' त्ति तेसिमित्थिलिंगेण णिद्देसो ण जुज्जदे, भिण्णाहियरणत्तादो ? ण एस दोसो, तिरियपदराणं पयडि त्ति विवक्खाए इत्थिलिंगत्तुवलंभादो । उस्सेहघणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तसव्व-जहण्णोगाहणाए देवगइं गच्छमाणस्स सित्थमच्छस्स एगो देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । पुणो तीए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वेण मुहागारेण देवगइं गच्छमाणस्स सित्थमच्छस्स बिदियो देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । मुहं सरीरं, तस्स आगारो संठाणं त्ति घेत्तव्वं । अत्र श्लोक :-

मुखमर्द्धं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते ।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा नासिकायाश्च चक्षुषी ।। ३५ ।।

एवं पुणो पुणो अलद्धपुव्वमुहागारेण देवेसुप्पज्जमाणसित्थमच्छाणं णवजोयण[1]-सदबाहल्लाणं तिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव सव्वजहण्णोगाहणमस्सिदूण देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडिवियप्पा लब्भंति । संपहि पदेसुत्तरसव्वजहण्णो-गाहणाए वि एत्तिया चेव वियप्पा लब्भंति। एवं दुपदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणप्पहुडि

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी होती हैं। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ।। १२२ ।।

शंका - 'तिरियपदराणि' इस प्रकार पहले नपुंसकलिंग रूपसे निर्देश करके पश्चात् 'गुणिदाओ' इस प्रकार उनका स्त्रीलिंग रूपसे निर्देश करना योग्य नहीं है, क्योंकि, इस प्रकारसे इनका भिन्न अधिकरण हो जाता है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, कयोंकि, तिर्यक्प्रतरोंकी 'प्रकृति' ऐसी विवक्षा होनेपर स्त्रीलिंगपना उपलब्ध हो जाता है ।

उत्सेध घनांगुलके संख्यातवें भागमात्र सर्वजघन्य अवगाहनाके द्वारा देवगतिको जानेवाले सिक्थ-मत्स्यके एक देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है । पुनः उसी सर्वजघन्य अवगाहनाके द्वारा अलब्धपूर्व मुखाकारके साथ देवगतिको जानेवाले सिक्थमत्स्यके दूसरा देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होता है । मुखका अर्थ शरीर है, उसका आकार अर्थात् संस्थान, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए । इस विषयमें श्लोक है -

शरीरके आधे भागको मुख कहते हैं, अथवा पूरा शरीर ही मुख कहलाता है । उसमें भी नासिका श्रेष्ठ है और नासिकासे भी दोनों आंखे श्रेष्ठ हैं । ३५ ।

इस प्रकार पुन: पुन: अलब्धपूर्व मुखाकारके साथ देवोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंके नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने अकाशप्रदेश होते हैं उतने ही सबसे जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं । अब एक प्रदेश अधिक सबसे जघन्य अवगाहनामें भी इतने ही प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं । इस प्रकार दो प्रदेश अधिक सर्वजघन्य

---

(१) ताप्रतौ: 'जोजण' इति पाठः ।

णेदव्वं जाव सव्वुक्कस्समहामच्छोगाहणे त्ति । संपहि एगोगाहणवियप्पस्स जदि णवजोयण[1]-सदबाहल्ल-तिरियपदरमेत्ता देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति तो संखेज्जघ-णंगुलमेत्तोगाहणमेत्त-वियप्पाणं केवडिए देवगइपाओग्गाणपुव्विवियप्पे लभामो त्ति सयलोगाहणवियप्पेहि णवजोयण[2]सदबाहल्लतिरियपदरेसु गुणिदेसु देवगइपाओग्गा-णुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडि-सव्ववियप्पा होंति ।

[3]एत्थ अप्पाबहुगं ।। १२३ ।।

किमट्ठमेदं कीरदे ? पयडीणं थोव-बहुत्तजाणावणट्ठं, अण्णहा अणुत्तस-माणत्तप्पसंगादो ।

सव्वत्थोवाओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ ।।१२४।।

कुदो ? सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागबाहल्लतिरियपदरेसु णिरएसुप्पज्जमा-णजीवाणमोगाहणट्ठाणेहि गुणिदेसु तासिं पमाणुप्पत्तीदो ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।।१२५।।

एत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, हेट्ठिमतिरियपदरस्स उवरिमतिरियपदरं सरिसं, हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहि उवरिमओगाहणट्ठाणाणि सरिसाणि त्ति अवणिय हेट्ठिम-

---

अवगाहनासे लेकर सबसे उत्कृष्ट महामत्स्यकी अवगाहना तक ले जाना चाहिए। अब यदि एक अवगाहनाविकल्पके नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरप्रमाण देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होते हैं तो संख्यात घनांगुलमात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार समस्त अवगाहनाविकल्पोंके द्वारा नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृतिके सब उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं ।

अब यहां अल्पबहुत्व कहते हैं ।। १२३ ।।

शंका - यह किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान - प्रकृतियोंके अल्प-बहुत्वका ज्ञान करानेके लिए, क्योंकि, अन्यथा अनुक्तके समान होनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक हैं ।। १२४ ।।

क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके अवगाहनास्थानोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर उनका प्रमाण उत्पन्न होता है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १२५ ।।

यहांपर गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, अधस्तन तिर्यक्प्रतरसे उपरिम तिर्यक्प्रतर सदृश है तथा अधस्तन अवगाहनास्थानोंसे उपरिम अवगाहनास्थान समान है,

---

(१) ताप्रतौ: 'जोजण' इति पाठः । (२) काप्रतौ 'णयजोयण', ताप्रतौ 'णवयोजण' इति पाठः ।
(३) ताप्रतौ सूत्रमिदं कोष्टक () स्थमस्ति ।

अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण णवजोयणसदे भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागुवलंभादो। हेट्ठिमसूचिअंगुलस्स पल्लस्स असंखेज्जदिभागो अवहारो होदि त्ति कुदो णव्वदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । एदेण णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु देवगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति ।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ संखेज्ज[1]गुणाओ ।।१२६।।

एत्थ गुणगारो संखेज्जाणि रूवाणि, हेट्ठिमतिरियपदरेण उवरिमतिरियपदरं सरिसं त्ति अवणिय हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहिंतो उवरिओगाहणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि त्ति ताणि वि अवणिय हेट्ठिमणवजोयणसदेण उवरिमपणदालीसजोयणसदसहस्सेसु ओवट्टिदेसु संखेज्जरूवोवलंभादो । एदेहि संखेज्जरूवेहि देवगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।।१२७।।

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहि उवरिमओगाहणट्ठाणाणि सरिसाणि त्ति अवणिय पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदरेण घणलोगे भागे हिदे सेडीए असंखेज्जदिभागस्स उवलंभादो ।

इसलिए इनको छोडकर अधस्तन अंगुलके असंख्यातवें भागका नौ सौ योजनमें भाग देनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है।

शंका – अधस्तन सूच्यंगुलका पल्योपमका असंख्यातवां भाग अवहार है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान – यह सूत्रसे अविरुद्ध कथन करनेवाले आचार्योंके वचनसे जाना जाता है ।

इससे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्पोंको गुणित करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं ।

उनसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां संख्यातगुणी हैं ।। १२६ ।।

यहांपर गुणकार संख्यात अंकप्रमाण है, क्योंकि, उपरिम तिर्यक्प्रतर अधस्तन तिर्यक्प्रतरके समान है, इसलिए उसे छोडकर तथा अधस्तन अवगाहनास्थानोंसे उपरिम अवगाहनास्थान विशेष अधिक हैं, इसलिए उन्हें भी छोडकर अधस्तन नौ सौ योजनका उपरिम पैंतालीस लाख योजनमें भाग देनेपर संख्यात अंक उपलब्ध होते हैं । इन संख्यात अंकोंसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्पोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं ।

उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १२७ ।।

यहांपर गुणकार श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि, पिछले अवगाहनास्थानोंसे अगले अवगाहनास्थान समान हैं, इसलिए उन्हें छोडकर पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप

---

(१) प्रतिषु 'असंखेज्ज' इति पाठः ।

भूओ अप्पाबहुअं ।। १२८ ।।

पुव्वमप्पाबहुगं भणिदूण किमट्ठं पुणो वुच्चदे ? अण्णं पि वक्खाणंतरमत्थि त्ति जाणावणट्ठं ।

सव्वत्थोवाओ मणुसगइ[1]पाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ ।।१२९।।

कुदो ? पणदालीसजोयणलक्खबाहल्लाणं तिरियपदराणमद्धच्छेदणएहि सव्वोगाहणट्ठाणेसु गुणिदेसु मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीणं सव्ववियप्पुप्पत्तीदो ।

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।।१३०।।

को गुणगारो ? असंखेज्जाणि जगपदराणि । कुदो ? हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहिंतो उवरिमओगाहणट्ठाणाणि विसेसहीणाणि त्ति अवणिय हेट्ठिमपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागबाहल्लतिरियपदरे भागे हिदे असंखेज्जतिरियपदरुवलंभादो ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।।१३१।।

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कारणं सुगमं ।

तिर्यक्प्रतरसे घनलोकको भाजित करनेपर श्रेणीका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है।

पुनः अल्पबहुत्व कहते हैं ।। १२८ ।।

शंका – पहले इसी अल्पबहुत्वको कहकर अब उसे पुनः किसलिए कहते हैं ?

समाधान – अन्य भी व्याख्यानान्तर हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिए उसका कथन फिरसे भी किया जा रहा है ।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे अल्प हैं ।। १२९ ।।

क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके अर्धच्छेदोंसे सब अवगाहनास्थानोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृतिके सब विकल्प उत्पन्न होते हैं ।

उनसे नरकगतिप्रायोग्यानुपुर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।।१३०।।

गुणकार क्या है ? असंख्यात जगप्रतर गुणकार है, क्योंकि, पिछले अवगाहनास्थानोंसे अगले अवगाहनस्थान विशेष हीन हैं, इसलिए उन्हें छोडकर पिछले पल्योपमके असंख्यातवें भागका अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरमें भाग देनेपर असंख्यात तिर्यक्प्रतर उपलब्ध होते हैं ।

उनसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १३१ ।।

गुणकार क्या है ? गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । कारण सुगम है ।

---

(१) काप्रतौ: 'मणुसजाइ' इति पाठः ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ।।१३२।।

सुगमं ।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं[1] ।। १३३ ।।

एदासिं पयडीणं उत्तरोत्तरपयडिपरूवणा जाणिदूण कायव्वा । ण च एदासिमुत्तरोत्तरपयडीओ णत्थि, पत्तेयसरीराणं धव-धम्ममणादीणं[2] साहारणसरीराणं मूलय-थूहल्लयादीणं बहुविहसर-गमणादीणमुवलंभादो ।

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ।। १३४ ।।

उच्च-नीचं[3] गमयतीति गोत्रम् । सेसं सुगमं ।

उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ।। १३२ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम ।। १३३ ।।

इन प्रकृतियोंकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंका कथन जानकर करना चाहिए । इनकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां नहीं हैं, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, धव और धम्ममन आदि प्रत्येकशरीर; मूली और थूहर आदि साधारणशरीर; तथा नाना प्रकारके स्वर और नाना प्रकारके गमन आदि उपलब्ध होते हैं ।

गोत्रकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ।। १३४ ।।

जो उच्च और नीचका ज्ञान कराता है उसे गोत्र कहते हैं । शेष कथन सुगम है ।

---

(१) षट्खं. जी.चू.१, ४२-४४. (२) अप्रतौ 'धवधम्माणादीणं', आ-काप्रत्योः 'धुवधम्माणादीणं', ताप्रतौ 'ववधम्माणादीणं' इति पाठः । (३) काप्रतौ 'उच्चं णीचं' इति पाठः ।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव[1]। एवडियाओ पयडीओ।। १३५ ।।

उच्चैर्गोत्रस्य क्व व्यापारः ? न तावद् राज्यादिलक्षणायां सम्पदि, तस्याः तद्वेद्यतः समुत्पत्तेः नापि पंचमहाव्रतग्रहणयोग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते, देवेष्वभव्येषु च तद्ग्रहणं प्रत्ययोग्येषु उच्चैर्गोत्रस्य उदयाभावप्रसंगात् । न सम्यग्ज्ञानोत्पत्तौ व्यापारः, ज्ञानावरण[2]क्षयोपशमसहाय-सम्यग्दर्शनतस्तदुत्पत्तेः । तिर्यग्-नरकेष्वपि उच्चैर्गोत्रस्योदयः स्यात्, तत्र सम्यग्ज्ञानस्य सत्त्वात् । नादेयत्वे यशसि सौभाग्यं वा व्यापारः, तेषां नामतः समुत्पत्तेः । नेक्ष्वाकुकुलाद्युत्पत्तौ, काल्पनिकानां तेषां परमार्थतोऽसत्त्वात् विड्-बाह्मणसाधुष्वपि उच्चैर्गोत्रस्योदयदर्शनात् । न सम्पन्नेभ्यो जीवोत्पत्तौ तद्व्यापारः, म्लेच्छराजसमुत्पन्नपृथुकस्यापि उच्चैर्गोत्रोदय-प्रसंगात् नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद्व्यापारः, देवेष्वौपपादिकेषु उच्चैर्गोत्रोदयस्यासत्त्वप्रसंगात् नाभेयस्य[3] नीचैर्गोत्रतापत्तेश्च । ततो निष्फलमुच्चैर्गोत्रम् । तत एव न तस्य कर्मत्वमपि । तदभावे न नीचैर्गोत्रमपि, द्वयोरन्योन्याविनाभावित्वात् । ततो गोत्रकर्माभाव

गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियां हैं - उच्चगोत्र और नीचगोत्र। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ।। १३५ ।।

शंका - उच्चगोत्रका व्यापार कहां होता है ? राज्यादि रूप सम्पदाकी प्राप्तिमें तो उसका व्यापार होता नहीं है, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति सातावेदनीय कर्मके निमित्तसे होती है । पांच महाव्रतोंके ग्रहण करनेकी योग्यता भी उच्चगोत्रके द्वारा नहीं की जाती है, क्योंकि, ऐसा माननेपर जो सब देव और अभव्य जीव पांच महाव्रतोंको नहीं धारण कर सकते हैं, उनमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिमें उसका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहकृत सम्यग्दर्शनसे होती है । तथा ऐसा माननेपर तिर्यंचों और नारकियोंके भी उच्चगोत्रका उदय मानना पडेगा, क्योंकि, उनके सम्यग्ज्ञान होता है । आदेयता, यश और सौभाग्यकी प्राप्तिमें इसका व्यापार होता है; यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इनकी उत्पत्ति नामकर्मके निमित्तसे होती है । इक्ष्वाकु कुल आदिकी उत्पत्तिमें भी इसका व्यापार नहीं होता, क्योंकि, वे काल्पनिक हैं, अतः परमार्थसे उनका अस्तित्व ही नहीं है । इसके अतिरिक्त वैश्य और ब्राह्मण साधुओंमें उच्चगोत्रका उदय देखा जाता है । सम्पन्न जनोंसे जीवोंकी उत्पत्तिमें इसका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, इस तरह तो म्लेच्छराजसे उत्पन्न हुए बालकके भी उच्च गोत्रका उदय प्राप्त होता है । अणुव्रतियोंसे जीवोंकी उत्पत्तिमें उच्चगोत्रका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर औपपादिक देवोंमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है, तथा नाभिपुत्र नीचगोत्री ठहरते हैं । इसलिए उच्चगोत्र निष्फल है, और इसीलिए उसमें कर्मपना भी घटित नहीं होता । उसका अभाव होनेपर नीचगोत्र भी नहीं रहता, क्योंकि, वे दोनों एक दूसरेके अविनाभावी हैं । इसलिए गोत्रकर्म है ही नहीं ?

(१) षट्खं. जी.चू. १, ४५. (२) ताप्रतौ 'ज्ञानवरण' इति पाठः ।
(३) अ-आ-काप्रतिषु 'नाभेयश्च', ताप्रतौ 'नाभेयश्च (स्य)' इति पाठः ।

इति ? न, जिनवचनस्यासत्यत्वविरोघात्। तद्विरोधोऽपि तत्र तत्कारणाभावतोऽवगम्यते। न च केवलज्ञानविषयीकृतेष्वर्थेषु सकलेष्वपि रजोजुषां ज्ञानानि प्रवर्त्तन्ते येनानुपलम्भाज्जिन-वचनस्याप्रमाणत्वमुच्येत । न च निष्फलं गोत्रम्, दीक्षायोग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृतसम्बन्धानां[1] आर्यप्रत्ययाभिधान-व्यवहारनिबंधनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चैर्गोत्रं तत्रोत्पत्तिहेतुकर्माप्युचैर्गोत्रम्[2] । न चात्र पूर्वोक्तदोषाः सम्भवन्ति, विरोधात् । तद्विपरीतं नीचैर्गोत्रम् । एवं गोत्रस्य द्वे प्रकृती भवतः ।

अंतराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ।। १३६ ।।

सुगमं ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ--दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं विरियंतराइयं चेदि[3] । एवडियाओ पयडीओ ।। १३७ ।।

अंतरमेति गच्छतीत्यन्तरायः[4] । रत्नत्रयवद्भ्यः स्ववित्तपरित्यागो दानं रत्नत्रयसाधनदित्सा वा । अभिलषितार्थप्राप्तिर्लाभः । सकृद्भुज्यत[5] इति भोगः गन्ध-ताम्बूल-

---

समाधान - नहीं, क्योंकि, जिनवचनके असत्य होनेमें विरोध आता है। वह विरोध भी वहां उसके कारणोंके नहीं होनेसे जाना जाता है । दूसरे, केवलज्ञानके द्वारा विषय किये गये सभी अर्थोमें छद्मस्थोंके ज्ञान प्रवृत्त भी नहीं हैं । इसीलिए यदि छद्मस्थोंके कोई अर्थ नहीं उपलब्ध होते हैं तो इससे जिनवचनको अप्रमाण नहीं कहा जा सकता । तथा गोत्रकर्म निष्फल है, यह बात नहीं है; क्योंकि, जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचारवालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है, तथा जो 'आर्य' इस प्रकारके ज्ञान और वचनव्यवहारके निमित्त हैं; उन पुरुषोंकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा जाता है । तथा उनमें उत्पत्तिका कारणकर्म भी उच्चगोत्र है । यहां पूर्वोक्त दोष सम्भव ही नहीं हैं, क्योंकि, उनके होनेमें विरोध है ।

उससे विपरीत कर्म नीचगोत्र है । इस प्रकार गोत्रकर्मकी दो ही प्रकृतियां होती हैं ।

अन्तराय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ।। १३६ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं - दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ।। १३७ ।।

जो अन्तर अर्थात् मध्यमें आता है वह अन्तरायकर्म है । रत्नत्रयसे युक्त जीवोंके लिए अपने वित्तका त्याग करने या रत्नत्रयके योग्य साधनोंके प्रदान करनेकी इच्छाका नाम दान है । अभिलषित अर्थकी प्राप्ति होना लाभ है । जो एक बार भोगा जाय वह भोग है । यथा- गन्ध,

---

(१) आ-का-ताप्रतिषु 'कृतसबंधनानां' इति पाठः । (२) काप्रतौ 'हेतुः कमप्युच्चैः गोत्रं', ताप्रतौ 'हेतुकमप्युच्चैर्गोत्रं' इति पाठः । (३) षट्खं. जी.चू.१, ४६. (४) दातृ-देयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः । स.सि.८, ४, दातृ-पात्रयोर्देयादेययोश्च अन्तरं मध्यम् एति गच्छतीत्यन्तरायः । त.वृ.८, ४, (५) ताप्रतौ 'भुज्जत' इति पाठः ।

पुष्पाहारादिः । परित्यज्य पुनर्भुज्यत इति परिभोगः स्त्री-वस्त्राभरणादिः । तत्राभरणानि स्त्रीणां चतुर्दश । तद्यथा - तिरीट-मुकुट-चूडामणि-हारार्द्धहार-कटि-कंठसूत्र-मुक्तावलि-कटकांगदांगुलीयक-कुंडलग्रैवेय-प्रालंबाः । पुरुषस्य खड्ग-क्षुरिकाभ्यां सह षोडश[1] । वीर्यः शक्तिरित्यर्थः । एतेषां विघ्नकृदन्तरायः । एवमंतराइयस्स पंच पयडीओ । एव कम्मपयडीए[2] समत्ताए दव्वपयडी समत्ता ।

जा सा भावपयडी णाम सा दुविहा- आगमदो भावपयडी चेव णोआगमदो भावपयडी चेव ।। १३८ ।।

आगमो सिद्धंतो सुदणाणं जिणवयणमिदि एयट्ठो । आगमदो अण्णो णोआगमो ।

जा सा आगमदो भावपयडी णाम तिस्से इमो णिद्देसो-ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं । जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जेचा मण्णे एवमादिया[3] उवजोगा भावे त्ति कट्टु जावदिया उवजुत्ता भावा सा सव्वा आगमदो भावपयडी णाम ।। १३९ ।।

पान, पुष्प और आहार आदि छोडकर जो पुनः भोगा जाता है वह उपभोग है। यथा- स्त्री, वस्त्र और आभरण आदि । इनमें स्त्रियोंके आभरण चौदह होते हैं । यथा- तिरीट, मुकुट, चूडामणि, हार, अर्धहार, कटिसूत्र, कण्ठसूत्र, मुक्तावलि, कटक, अंगद, अंगूठी, कुण्डल, ग्रैवेय और प्रालम्ब । पुरुषके खड्ग और छुरीके साथ वे सोलह होते हैं । वीर्यका अर्थ शक्ति है । इनकी प्राप्तिमें विघ्न करनेवाला अन्तराय कर्म है । इस प्रकार अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं ।

इस प्रकार कर्मप्रकृतिके समाप्त होनेपर द्रव्यप्रकृति समाप्त हुई ।

जो भावप्रकृति है वह दो प्रकारकी है- आगमभावप्रकृति और नोआगमभावप्रकृति ।।१३८।।

आगम, सिद्धान्त, श्रुतज्ञान और जिनवचन, ये एकार्थवाची शब्द हैं । आगमसे अन्य नोआगम है।

जो आगमभावप्रकृति है उसका यह निर्देश है- स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम तथा इनमें जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर और जो उपयोग हैं वे सब भाव हैं; ऐसा समझकर जितने उपयुक्त भाव हैं वह सब आगमभावप्रकृति है ।।१३९।।

---

(१) कुंडलमंगद-हारा मउडं केयूरपट्ट-कडयाइं । पालंबसुत्त-णेउर-दोमुहि-मेहलासि छुरियाओ ।। गेवज्जं कण्णपुरा पुरिसाणं होंति सोलसाभरणं । चोद्दस इत्थीआणं छूरिया करवालहीणाइं ।। कधय-कडिसुत्त-णेउर-तिरीरपालंबसुत्त-मुद्दीओ । हारा कुंडल-मउलद्धहार-चूडामणी वि गेविज्ञा ।। अंगद-छुरिया खग्गा. पुरिसाणं होंति सोलसाभरणं । चोद्दस इत्थीण तहा छुरियाखग्गेहिं परिहीणा ।। ति.प.४, ३६१-६४.

(२) आप्रतौ 'पंचपयडीए' इति पाठः । (३) षट्खं. क.अ. ५४-५५.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा वेयणाए परूविदो तहा परूवेयव्वो, विसेसाभावादो।

जा सा णोआगमदो भावपयडी णाम सा अणेयविहा । तं जहा– सुर–असुर–णाग–सुवण्ण–किण्णर–किंपुरिस–गरुड–गंधव्व–जक्ख–रक्खस–मणुअ–महोरग–मिय–पसु–पक्खि–दुवय–चउप्पय–जलचर–थलचर–खगचर–देव–मणुस्स–तिरिक्ख–णेरइयणियणुगा पयडी सा सव्वा णोआगमदो भावपयडी णाम ।। १४० ।।

तत्र अहिंसाद्यनुष्ठानरतयः सुरा नाम । तद्विपरीताः असुराः । फणोपलक्षिताः नागाः । सुपर्णा नाम शुभपक्षाकारविकरणप्रियाः । गीतरतयः किन्नराः । प्रायेण मैथुनप्रियाः किंपुरुषाः। गरुडाकारविकरणप्रियाः गरुडाः । इन्द्रादीनां गायकाः[1] गान्धर्वाः । लोभभूयिष्ठाः भांडागारे नियुक्ताः यक्षाः नाम । भीषणरूपविकरणप्रियाः राक्षसा नाम । मानुषीसु मैथुनसेवकाः मनुजा नाम । सर्पाकारेण विकरणप्रियाः महोरगाः नाम । रोमंथवर्जितास्तिर्यंचो मृगा नाम । सरोमंथाः पशवो नाम । पक्षवन्तस्तिर्यंचः पक्षिणः । द्वौ पादौ येषां ते द्विपादाः । चत्वारः पादाः येषां ते चतुष्पादाः । मकर–मत्स्यादयो जलचराः । वृक–व्याघ्रादयः[2]

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा जिस प्रकार वेदना अनुयोगद्वसर (पु.९, पृ.२५१–२६४) में की गई है उसी प्रकारसे यहां भी करनी चाहिए, क्योंकि, उससे यहां कोई विशेषता नहीं है।

जो नोआगमभावप्रकृति है वह अनेक प्रकारकी है । यथा– सुर, असुर, नाग, सुपर्ण, किंनर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुज, महोरग, मृग, पशु, पक्षी, द्विपद, चतुष्पद, जलचर, स्थलचर, खगचर, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी; इन जीवोंकी जो अपनी अपनी प्रकृति है वह सब नोआगमभावप्रकृति है ।। १४० ।।

जिनकी अहिंसा आदिके अनुष्ठानमें रति है वे सुर कहलाते हैं । इनसे विपरीत असुर होते हैं । फणसे उपलक्षित नाग कहलाते हैं । शुभ पक्षोंके आकाररूप विक्रिया करनेमें अनुराग रखनेवाले सुपर्ण कहलाते हैं । गानमें रति रखनेवाले किंनर कहलाते हैं । प्रायः मैथुनमें रुचि रखनेवाले किंपुरुष कहलाते हैं । जिन्हें गरुडके आकाररूप विक्रिया करना प्रिय है वे गरुड कहलाते हैं । इन्द्रादिकोंके गायकोंको गान्धर्व कहते हैं । जिनके लोभकी मात्रा अधिक होती है और जो भाण्डागारमें नियुक्त किये जाते हैं वे यक्ष कहलाते हैं । जिन्हें भीषण रूपकी विक्रिया करना प्रिय है वे राक्षस कहलाते हैं । मनुष्यिनियोंके साथ मैथुन कर्म करनेवाले मनुज कहलाते हैं । जिन्हें सर्पाकार विक्रिया करना प्रिय है वे महोरग कहलाते हैं । जो तिर्यंच रोंथते नहीं हैं वे मृग कहलाते हैं और जो रोंथते हैं वे पशु कहलाते हैं । पंखोंवाले तिर्यंच पक्षी कहलाते हैं । जिनके दो पैर होते हैं वे द्विपाद कहलाते हैं जिनके चार पैर होते है वे चतुष्पाद कहलाते हैं । मगर–मछली आदि जलचर कहलाते हैं । भेडिया और वाघ आदि स्थलचर कहलाते हैं । जो आकाशमें गमन करते हैं वे खचर कहलाते हैं । जो अणिमा आदि गुणोंके द्वारा 'दीव्यन्ति' अर्थात् क्रीडा करते हैं

---

(१) का–ताप्रत्योः 'गायनाः' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'वृषव्याघ्रादयः' इति पाठः ।

स्थलचरा:। खे चरन्तीति खचरा: । अणिमादिगुणैर्दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवा: । मनसा उत्कटा: मानुषा: । तिर: अञ्चन्ति कौटिल्यमिति तिर्यंच: । न रमन्त इति नारका: । एतेषां निजानुगा या प्रकृति: सा सर्वा नोआगमभावप्रकृतिर्नाम । एतत्सूत्रं येन देशामर्शकं तेन ये केचन जीवभावा: कर्म्मवर्जितअजीवभावाश्च ते सर्वेऽप्यत्र वक्तव्या: । एवं नोआगमदो भावपयडीए सह भावपयडी समत्ता ।

एदासिं पयडीणं काए पयडीए पयदं ? कम्मपयडीए पयदं ।। १४१।।

एदमुवसंहारमस्सिदूण भणिदं । अणुवसंहारे पुण आसइज्जमाणे णोआगमदव्वपयडीए णोआगमभावपयडीए च अहियारो, तत्थ दोण्णं वित्थारपरूवणादो । एवं पगडिणिक्खेवे त्ति समत्तं ।

सेसं वेदणाए भंगो ।। १४२ ।।

सेसाणुओगद्दाराणं जहा वेयणाए परूवणा कदा तहा कायव्वा ।

एवं पगदि त्ति समत्तमणुयोगद्दारं ।

अबोधे बोधे यो जनयति सदा शिष्य:कुमुदेप्र
प्रभूय प्रह्लादी दुरितपरितापोपशमन: ।
तपोवृत्तिर्यस्य स्फुरति जगदानन्दजननी
जिनध्यानासक्तो जयति कुलचन्द्रो मुनिरयम् ।।

वे देव कहलाते हैं । जो मनसे उत्कट होते हैं वे मानुष कहलाते हैं । जो 'तिर:' अर्थात् कुटिलताको प्राप्त होते हैं, वे तिर्यंच कहलाते हैं । जो रमते नहीं हैं वे नारक कहलाते हैं । इनकी अपने अनुकूल जो प्रकृति होती है वह सब नोआगमभावप्रकृति है । यह सूत्र यत: देशामर्शक हैं, अतः जो कोई जीवभाव है और कर्मसे रहित जितने अजीव भाव हैं वे सब यहांपर कहने चाहिए । इस प्रकार नोआगमभावप्रकृतिके साथ भावप्रकृति समाप्त हुई ।

इन प्रकृतियोंमें किस प्रकृतिका प्रकरण है ? कर्मप्रकृतिका प्रकरण है ।। १४१ ।।

यह उपसंहारका आलम्बन लेकर कहा है । अनुपसंहारका आश्रय करनेपर तो नोआगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमभावप्रकृतिका भी अधिकार है, क्योंकि, वहां दोनोंका विस्तारसे कथन किया है । इस प्रकार प्रकृतिनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

शेष कथन वेदना अनुयोगद्वारके समान है ।। १४२ ।।

शेष अनुयोगद्वारोंकी जिस प्रकार वेदना अनुयोगद्वारमें प्ररूपणा की है उसी प्रकार यहां भी करनी चाहिए ।

इस प्रकार प्रकृति नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।